श्री सीता-राम संवाद

चौपाई :

*** मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥ राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥1॥

भावार्थ:

माता के सामने सीताजी से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले- हे राजकुमारी! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना॥1॥

*** आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥ आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥2॥

भावार्थ:

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है॥2॥

*** एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥ जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥3॥

भावार्थ:

आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जाएगी (वे अपने-आपको भूल जाएँगी)॥3॥

*** तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥ कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥4॥

भावार्थ:

हे सुंदरी! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि! मुझे सैकड़ों सौगंध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ॥4॥

दोहा :

*** गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस। हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥61॥

भावार्थ:

(मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म (के आचरण) का फल

तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है, किन्तु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सब ने संकट ही सहे॥61॥

चौपाई :

*** मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥ दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥1॥

भावार्थ:

हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुंदरी! हमारी यह सीख सुनो!॥1॥

*** जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥ काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥2॥

भावार्थ:

हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं॥2॥

*** कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥ चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥3॥

भावार्थ:

रास्ते में कुश, काँटे और बहुत से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलनाहोगा। तुम्हारे चरणकमल कोमल और सुंदर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं॥3॥

*** कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥ भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥4॥

भावार्थ:

पर्वतों की गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है॥4॥

दोहा :

*** भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल। ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥62॥

भावार्थ:

जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कंद, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूलही मिल सकेगा॥62॥

चौपाई :

*** नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥ लागइ अति पहार कर पानी।

बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥1॥

भावार्थ:

मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपट रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती॥1॥

*** ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥ डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥2॥

भावार्थ:

वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुंड के झुंड रहते हैं। वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो!॥2॥

*** हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥ मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥3॥

भावार्थ:

हे हंसगमनी! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है॥3॥

*** नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥ रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥4॥

भावार्थ:

नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे चन्द्रमुखी! हृदय में ऐसा विचार कर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है॥4॥

दोहा :

*** सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥63॥

भावार्थ:

स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है॥63॥

चौपाई :

*** सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥ सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें॥1॥

भावार्थ:

प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताजी के सुंदर नेत्र जल से भर गए। श्रीरामजी

की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है॥1॥

*** उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥ बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥2॥

भावार्थ:

जानकीजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आँसुओं) को जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वी की कन्या सीताजी हृदय में धीरज धरकर,॥2॥

*** लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी। दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥3॥

भावार्थ:

सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं- हे देवि! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा परम हित हो॥3॥

*** मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥4॥

भावार्थ:

परन्तु मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुःख नहीं है॥4॥

दोहा :

*** प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान। तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥64॥

भावार्थ:

हे प्राणनाथ! हे दया के धाम! हे सुंदर! हे सुखों के देने वाले! हे सुजान! हे रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है॥64॥

चौपाई :

*** मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृदय समुदाई॥ सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥1॥

भावार्थ:

माता, पिता, बहिन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बांधव), सहायक और सुंदर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र-॥1॥

*** जहँ लगिनाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥ तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥2॥

भावार्थ:

हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिए यह सब शोक का समाज है॥2॥

*** भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥ प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥3॥

भावार्थ:

भोग रोग के समान हैं, गहने भार रूप हैं और संसार यम यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है॥3॥

*** जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥ नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥4॥

भावार्थ:

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ! आपके साथ रहकर आपका शरद्-(पूर्णिमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे॥4॥

दोहा :

*** खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल। नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥65॥

भावार्थ:

हे नाथ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी॥65॥

चौपाई :

*** बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥ कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥1॥

भावार्थ:

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-संभार करेंगे और कुशा और पत्तों की सुंदर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी॥1॥

*** कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥ छिनु-छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥2॥

भावार्थ:

कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और (वन के) पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनंदित

रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है॥2॥

*** बन दुख नाथ कहे बहु तेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥ प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥3॥

भावार्थ:

हे नाथ! आपने वन के बहुत से दुःख और बहुत से भय, विषाद और सन्ताप कहे, परन्तु हे कृपानिधान! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग (से होने वाले दुःख) के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते॥3॥

*** अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥ बिनती बहु तकरौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥4॥

भावार्थ:

ऐसा जी में जानकर, हे सुजान शिरोमणि! आप मुझे साथ ले लीजिए, यहाँ न छोड़िए। हे स्वामी! मैं अधिक क्या विनती करूँ? आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अंदर की जानने वाले हैं॥4॥

दोहा :

*** राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान। दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥66॥

भावार्थ:

हे दीनबन्धु! हे सुंदर! हे सुख देने वाले! हे शील और प्रेम के भंडार! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रखते हैं, तो जान लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे॥66॥

चौपाई :

*** मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥ सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥1॥

भावार्थ:

क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होने वाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी॥1॥

*** पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥ श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥2॥

भावार्थ:

आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीने की बूँदों सहित श्याम शरीर को देखकर प्राणपति के दर्शन करते हुए दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा॥2॥

*** सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥ बार बार मृदु मूरति जोही।

लागिहि तात बयारि न मोही॥3॥

भावार्थ:

समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी॥3॥

*** को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥ मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥4॥

भावार्थ:

प्रभु के साथ (रहते) मेरी ओर (आँख उठाकर) देखने वाला कौन है (अर्थात कोई नहीं देख सकता)! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय भोग?॥4॥

दोहा :

*** ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान। तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥67॥

भावार्थ:

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु! (मालूम होता है) ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दुःख सहेंगे॥67॥